International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 7 Issue 09 Ver. I ||September 2018 || PP 73-75

वैदिक साहित्य में पर्यावरण प्रबन्धन

डॉ. वीरेन्द्र कुमार जोशी
व्याख्याता संस्कृत
गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय
अलवर

पर्यावरण , जीवन का स्रोत है तथा सम्पूर्ण विकास का निर्धारक एवं नियंत्रक है। एक ओर पर्यावरण की अनुकूलता सभ्यता एवं संस्कृति के विकास का आधार है तो दूसरी ओर पर्यावरण प्रदूषण इसमें बाधक । पर्यावरण प्रदूषण आज एक विश्वव्यापी समस्या है । क्योंकि इससे पारिस्थितिकी असन्तुलन उत्पन्न होता है , जो पृथ्वी पर जीवन के लिए हानिकारक है । प्रौद्योगिकी एवं वैज्ञानिक तकनीकों ने जहाँ हमें अनेक सुविधायें प्रदान कर जीवन को सुखद एवं सुन्दर बनाया है , वहीं इसके फलस्वरूप पर्यावरण अवकर्षण जीव – जगत के लिए संकट का कारण बनता जा रहा । विकास आवश्यक है किन्तु पर्यावरण की हानि पर नहीं । विकास ऐसा होना चाहिए कि पर्यावरण सुरक्षित एवं संरक्षित रहे।

आज , जब विश्व पर्यावरण की समस्या से ग्रसित है । पृथ्वी में निरन्तर ताप वृद्धि से लेकर वनों के कटाव तक , झील, नदियाँ एवं सागर में व्याप्त प्रदूषण तथा वायु और ओजोन स्तर में होने वाले छिद्र तक इन सभी से मानव अस्तित्व पर अदृश्य संकट गहराया हुआ है । सभी प्राकृतिक संसाधन जैसे भूमि , हवा , जल , वन एवं जन्तु , मानव जीवन से सम्बद्ध हैं । मानव के पूर्ण विकास एवं अस्तित्व बनाए रखने के लिए इनकी आवश्यकता है ।

पर्यावरण अर्थात परितः आवरणम् – हमारे चारों ओर का वह वातिवरण जिसका हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से उपभोग करते हैं । इसके अन्तर्गत प्रकृतिजन्य सभी तत्त्व–आकाश, जल, अग्नि, ऋतुएं, पर्वत, नदियाँ, तडाग, वृक्ष, वनस्पति, जीव–जन्तु, ग्रह, नक्षत्र, दिशाएं एक तरह से अखिल ब्रह्माण्ड ही समाहित हो जाता है। वातावरण के ये सभी तत्त्व मानव जीवन को प्रभावित करते हैं। साथ ही ये स्वयं भी मानवीय कृत्यों से प्रभावित होते हैं। इस प्रकार मानव तथा प्रकृति अन्योन्याश्रित रूपेण सम्बद्ध हो जाते हैं। इस समस्या को केन्द्र में रखकर जब हम भारतीय चिन्तन पर विचार करते हैं तो हमें संस्कृत भाषा में रचित विभिन्न शास्त्रों में पर्यावरण सम्बन्धी नैतिक अनुशासन सतत विकसित होता हुआ दृष्टिगत होता है , जिसमें मानव तथा प्रकृति के प्रति मानवीय व्यवहार के नियमों को भी निर्धारित किया गया है । भारतीय संस्कृति की मान्यता रही है कि मानव स्वयं को प्राकृतिक पर्यावरण से पृथक नहीं कर सकता है ।

प्राचीन भारत में पर्यावरण प्रदूषण जैसी कोई समस्या नहीं थी फिर भी इस सन्दर्भ में वैदिक ऋषियों का चिन्तन अतिशय व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक रहा है । पर्यावरण के सन्दर्भ में वैदिक ऋषियों की अधोलिखित भावनायें दर्शनीय हैं –

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥

मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव रजः मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥

मधुमानो वनस्पतिर्मधुमाँ २ अस्तु सूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥

संसार में वायु मधुर बहें , नदियाँ मधुर बहें , औषधियाँ मधुर उत्पन्न हों । रात मधुर हो , प्रभात मधुर हो और हमारा पिता द्यौ मधुर हो , वनस्पतियाँ मधुर हों । सूर्य मधुर हो और गायें मधुर हों ।

प्रकृति एवं मनुष्य एक दूसरे के पूरक हैं , एक के अभाव में दूसरे के सद्भाव की कल्पना नहीं की जा सकती । यही कारण है कि प्राचीन काल में पर्यावरण मानवीय जीवन–पद्धति में मिला हुआ है । मानव जीवन का कोई भी पक्ष पर्यावरण से पृथक् करके नहीं देखा जा सकता । प्राचीन काल में मनुष्यों की नित्यक्रिया , संस्कार , व्रत – अनुष्ठान , त्यौहार , क्रियाकर्म , पूजा – पद्धति, नृत्य – गीत सभी में पर्यावरण समाहित है । एक समय ऐसा था जब हमारी दृष्टि में चर–अचर सभी सजीव थे । सबके प्रति हमारे मन में आदर एवं सद्भाव था ।

वैदिक–साहित्य में हमें जिन देवताओं की पूजा अर्चना एवं स्तुतियां हैं , उनके सम्बन्ध में विद्वानों की मान्यता है कि वे प्राकृतिक तत्त्वों में निहित शक्तियों के प्रतीक हैं । ऋषियों ने इन्हीं शक्तियों में देवी – देवताओं की प्रतिष्ठा करके प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर मानवीय प्रेम को बढ़ाया । उनका यह विश्वास था कि उन्हीं देवताओं की कृपा से समस्त विश्व का कार्य संचालित होता है एवं प्राकृतिक घटनाएँ भी उन्हीं के माध्यम से घटित होती हैं । अतएव वैदिक काल में आर्यों ने उनकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्न कर अपने जीवन को तथा अपनी धरती को सुखी एवं सम्पन्न बनाने का प्रयत्न किया।

पृथ्वी में होने वाले दोषों को सुधारने का कार्य वृक्ष बड़ी सहजता से करते हैं । वर्तमान कल – कारखानों से निकलने वाले वायवीय प्रदूषण के विष को ये शिव की तरह पी जाते हैं । वृक्षों की पत्तियाँ वायु में मिले प्रदूषक पदार्थों के सूक्ष्म कणों को रोक और सोख लेती हैं । अथर्ववेद कहता है कि जिस भूमि में वृक्ष तथा वनस्पतियाँ सदा खड़ी रहती हैं , वह भूमि विश्व के समस्त जनों का भरण – पोषण करने में समर्थ होती है –

यस्यां वृक्षा वनस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।

पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि ।।

यजुर्वेद में 'वृक्षाणां पतये नमः' कहकर वृक्षों की रक्षा करने वालों के लिए सत्कार प्रदर्शित किया गया है ।

भारतीय व्रतों , पर्वो एवं माङ्गलिक कृत्यों में पर्यावरण के तत्त्वों की ही प्रधानता है । वटसावित्री में वटपूजा , कार्तिक में तुलसीपूजा , एकादशी पर आँवले की पूजा , नवरात्र में नागपञ्चमी में नाग की पूजा , दशहरे पर नीलकण्ठ एवम् अश्व की पूजा , हलषष्ठी में कुश एवं छिडल की पूजा भी क्षेत्रीय परम्परानुसार की जाती है। सन्तान के लिये केले की , सन्तान वृद्धि के लिये कुश – कास एवं बाँस की , उचित वर – प्राप्ति के हेतु पीपल की , ऋद्धि – सिद्धि के लिये सुपारी , खजूर एवं बाँस वृक्ष की उपासना कहीं – कहीं आज भी प्रचलित है । देवताओं से लेकर जीव – जन्तुओं , वृक्ष – वनस्पतियों के प्रति भरण – पोषण की सद्भावना वाला निम्नलिखित पद्य पर्यावरण की प्राचीन अवधारणा को स्पष्ट करता है –

देवा मनुष्याः पशवो वयांसि सिद्धाः सयक्षोरगदैत्यसंघाः ।

प्रेताः पिशाचाः तरवः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम् ।।

पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्याः बुभुक्षिताः कर्मणि बद्धबद्धाः ।

प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥

आज भी सीमा पर स्थित सघन वृक्ष – वनस्पतियाँ युद्ध के समय सैनिकों की रक्षा करती हैं । सीमा पर सघन वृक्ष – वनस्पतियों का संरोपण करने के लिये मनुस्मृति का निम्न कथन पर्यावरण की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है –

सीमावृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान् ।

शाल्मलीन्सालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान् ॥

गुल्मान् वेणूश्च विविधाञ्छमीवल्ली स्थलानि च ।

शरान्कुब्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति ॥

अथर्ववेद में अनेक सूक्त वनस्पतियों को समर्पित हैं । अथर्ववेद में वनस्पतियों का वर्गीकरण भी किया गया है । आयुर्वेद में रोग निवारण के लिए प्रयोग में आने वाली वनस्पति कब , कैसे , किसके द्वारा उखाड़ी जाए , इसकी भी चर्चा की गई है , जिससे कोई अयोग्य पुरुष उस वनस्पति का वंश ही नष्ट न कर दे ।

ऋग्वेद में औषधियों के नाना प्रकारों का संकेत मंत्र में स्पष्ट रूप से किया गया है –

याः फलिनीर्या अफला याश्च पुष्पिणीः ।

बृहस्पतिप्रसूतास्ता ना मुञ्चन्त्वंहसः ॥

ऋग्वेद का 'अरण्यानी' सूक्त वनों की रक्षा के लिए प्रेरणादायक है । इन अरण्यों के बल पर ही यह संस्कृति पल्लवित और पुष्पित होती रही। आज भी पीपल, बरगद, बेल और तुलसी जैसे वृक्षों का पूजन इस देश में होता है ।

हमारा सारा चिकित्सा –शास्त्र जो आयुर्वेद के नाम से जाना जाता है , औषधियों तथा वनस्पतियों पर निर्भर है । उसके महत्त्व को स्वीकार कर ही उसे उपवेद के रूप में स्वीकार किया गया है । वृक्ष भूमि पर नमी बनाकर बादलों को बरसने के लिए प्रेरित करते हैं और जड़ों के माध्यम से जल को भूमि से सुरक्षित रख जलस्तर को बनाए रखते हैं । पृथ्वी को मां के समान महत्त्व प्रदान कर उसकी प्रासंगिकता के साथ – साथ वैदिक ऋषि ने पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी भावना का उदात्त रूप प्रस्तुत किया है दृ

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या : ।

वैदिक ऋषि जल की शुद्धता के प्रति सजग थे। वे कहते हैं कि यदि उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करना हो तो उत्तम से उत्तम पवित्र जल ही ग्रहण करना चाहिये ।

जल संरक्षण के विषय में भी वैदिक साहित्य में पर्याप्त चिन्तन किया गया है । ऋषि कहते हैं – जल ही जीवन है । जल का नाम ही अमृत है अर्थात् जीवन रूप रस ही जल है । यह बात इन शब्दों द्वारा व्यक्त की गई है –" अप्सु अमृतम" , "अप्सु भेषजम'' अर्थात् जल अमृतमय है और औषधिमय है । मृत्यु से बचाने वाला जल अमृत है और शरीर के दोषों का क्षय कर शरीर की निर्दोषता सिद्ध करने वाला जल भेषज कहलाता है । यही बात निम्न मंत्र द्वारा स्पष्ट की गई है –

आप इद्वा उ भेषजीरापो अगीचातनीः ।

आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्छन्तुः क्षेत्रियात।।

अर्थात् जल निःसंदेह औषधि है, जल रोगनाशक है, जल सब रोगों की दवा है, वह जल तुझे क्षेत्रयरोग से छुड़ा दे –

इमा आपः प्रभराभ्ययक्ष्या यक्ष्मनाशिनी।

गृहानुपुसीदामि अमृतेन सहाग्निना ॥

ये रोग नाशक और रोग रहित जल मैं भर लाता हूँ। इस मंत्र में यह सूचित किया गया कि घर में जल लाया जाए वह आरोग्य वर्धक हो ।

पर्यावरण प्रदूषण का एक प्रमुख कारण आधुनिक व्यक्ति की आवश्यकताओं का अधिक होना , तृष्णा एवं भोगवादी संस्कृति भी है । इसलिए हमारे ऋषियों ने अपरिग्रह तथा त्याग को प्रमुखता दी । ईशावास्योपनिषद् में कथन है –

तेन त्यक्तेन भुंजीथा : ।

वैदिक साहित्य में पर्यावरण सम्बन्धी चित्रण ने ही देश को धनधान्यं सम्पन्न बनाया था । शास्त्र का अध्ययन , विद्या का अर्जन , विज्ञान का उपार्जन तभी सार्थक है , जब हम उसको व्यवहार में लाएँ। वैदिककालीन ऋषियों का पर्यावरण चिन्तन ही था जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने हर तथ्य को व्यावहारिकता की कसौटी पर कसा और इसी का प्रतिफल यज्ञ के अवसर पर निःसृत सामगान था । वैदिक ऋषियों के कलकण्ठ से निकला हुआ सामगान वायु मण्डल को संगीतमय बनाकर पर्यावरण को सरसता से भर कर आत्मा को ऊर्ध्वमुखी बनाता था ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वैदिक आर्य पर्यावरण के प्रति पूर्ण रूप से सजग थे। उन्होंने प्रकृति के उपादानों का अपने जीवन में सही उपयोग किया तथा उसकी सुरक्षा और सन्तुलन के भी प्रयास किये ।

वैदिक आर्यों ने जहाँ एक ओर प्रकृति को ईश्वरीय शक्ति मानकर उसकी विभिन्न रूपों में आराधना की वहीं दूसरी ओर प्राकृतिक संपदा के महत्त्व को समझते हुए उसकी सुरक्षा के भी प्रयास किए। जिन सिद्धान्तों और आदर्शों के माध्यम प्रकृति की सुरक्षा हो । सकती थी एवं पर्यावरण संतुलित रह सकता था, उन्हीं माध्यमों को उन्होंने अपनी जीवन शैली का अंग बना लिया।

सन्दर्भ – ग्रन्थ – सूची

1 – ऋकसूक्त संग्रह – व्याख्याकार – डॉ. हरिदत्तशास्त्री , डॉ. कृष्णकुमार
2 – वैदिक – सूक्त – रत्नावली – व्याख्याकार डॉ. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी
3 – वैदिक साहित्य का इतिहास – डॉ. पारसनाथ द्विवेदी
4 – संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी
5 –शैक्षिक मंथन पत्रिका – जून 2018
6 – पर्यावरण अध्ययन – डॉ. एल. एन. वर्मा ,डॉ.एल. सी. खत्री
7 – प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका – डॉ. रामजी उपाध्याय
8 – संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य
9 – ऋग्वेद
10 – यजुर्वेद
11 – अथर्ववेद
12 – ईशावास्योपनिषद् – सम्पादक – डॉ. हरीनारायण यादव